REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2019

उपन्यास आलोचना के नए संदर्भ और 'त्यागपत्र'

भागिरथ चौधरी
हिन्दी विभाग,एम0एम0टी0एम0 कॉलेज,दरभंगा

सारांशः

उपन्यास विधा आधुनिक काल की अपनी विधा है। यह अतीत की सभी विधाओं से भिन्न है। यहा तक कि पुरानी गद्य विधाओं जो आधुनिक काल से पहले प्रारंभिक रूप से छिपपुट मिलती है, उनसे भी भिन्न है। उपन्यास के संदर्भ में सबसे पहली बहस यथार्थवाद की चली है। इसमें संदेह नहीं कि उपन्यास, यथार्थ को तुलनात्मक तौर पर ज्यादा करीबी ढ़ंग से चित्रित करने में समर्थ है लेकिन जीवन का हू–ब–हू नकल यथार्थ नहीं हो सकता। जैसा कि ऑयन वॉट ने लिखा है, ''उपन्यास में चित्रित यथार्थवाद इस बात में निहित नहीं कि इसमें किस प्रकार के जीवन का निरूपण है बल्कि इस बात में है कि उसे किस ढ़ंग से रूपायित किया गया है।''

प्रस्तावनाः

आधुनिक भावबोध के उदय ने प्रत्येक व्यक्ति को यथार्थ का व्याख्याता बना दिया। यथार्थ का दर्शनपरक सार्वभौम मान्यता के विपरीत अब प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को यथार्थ के समकक्ष रख सकता था। यह आधुनिक यथार्थवाद था जो इस मान्यता पर टिका था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इंद्रियात्मक संवेदना के आधार पर यथार्थ का व्याख्या है।

उपन्यास का आरंभ एक ऐसे काल में हुआ जो काल प्राचीन और मध्यकालीन परंपराओं से अपने को मुक्त करने की तैयारी में था। जो विवके और तर्क को प्रधानता देता है, सार्वभौम विचार और सामूहिक कथा तत्व से इतर नए युग को अपनी विधा की तलाश थी। इस नए युग की विधा बना उपन्यास। उपन्यास साहित्य में नए किस्म की व्यक्तिकेन्द्रिकता को लेकर आया। यह परंपरा का अनुकरण नहीं करता है। पुरानी विधाओं के साहित्यिक रूढ़िवाद को बहुत बड़ी चुनौती उपन्यास से मिली। इसका कारण उपन्यास की संरचना और व्यक्तिगत अनुभूति की जमीन थी उपन्यास के पहले महाकाव्य की धूम थी। जिसमें सार्वभौम सत्य और सामूहिक अनुभूति की प्रधानता था। देशकान का सुदूर अतीत में प्रतिष्ठित होना महाकाव्य की विशेषता थी। उपन्यास ने सबसे पहले विधारूप में महाकाव्य से अपने–आप को अलग किया। इसने व्यक्ति की प्रतिष्ठा की और उसके व्यक्तिगत अनुभव को तरजीह दिया। अब प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट अनुभव सत्य का दर्जा रखने लगा। उपन्यास, महाकाव्य की अनुकरण परंपरा का निषेध है। इसमें किसी भी तरह का अनुकरण या 'पूर्व–स्थापित नियमित परंपराओं पर ध्यान देना उसकी सफलता के लिए हानिकर हो सकता है।[1]

उपन्यास ने महाकाव्य से अपने को अलगाने के क्रम में परंपरागत कथानकों से दूरी बनाई। यह बड़ी बात थी। परंपरा में रखकर विश्लेषण के क्रम में रीतिवाद का जन्म होता है। भाष्य और पाठांतर की परंपरा का जन्म होता है। 'उपन्यास में परंपराविहीन कथानक का प्रयोग इसी महत्व को दर्शानेवाली स्वतंत्र अभिव्यक्ति है।'(वही, पृ. 9) उपन्यास अतीत में नहीं रहता, उसका देशकाल वर्तमान होता है। अतीत की विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यास भी वर्तमान उन्मुख होते हैं। उपन्यास की यथार्थोन्मुखता तथा स्पष्ट भाषा

शैली उसे अधिक सुगम बनाते हैं, दुनियाभर में विभिन्न भाषाओं के बीच जितना अनुवाद कार्य हुआ है, उसमें बड़ा हिस्सा उपन्यास का है। उपन्यास अपने समय और समाज से मुखातिब रहता है। यह अपने समय और समाज का निकटतम रूप प्रस्तुत करता है और यही कारण है कि यथार्थ का एक सबसे करीबी रूप उपन्यास में प्रतिबिंबित होता है।[2]

एडवर्ड सईद ने स्वीकार किया है कि उपन्यास का जन्म औद्योगीकरण के साथ हुआ पर तीसरी दुनिया के देशों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया साम्राज्यवाद की पिछलग्गू बनकर आई। साम्राज्यवाद का एजेंडा कोई प्रगतिशील एजेंडा नहीं था बल्कि भेद–मूलक एजेंडा था। सईद ने उपन्यास के संदर्भ में अन्य विचारकों की तरह ''मौलिक' और 'अनुकरण' के भेद को महत्वपूर्ण नहीं माना है। सदई ने लिखा है, ''एक संकुचित अनुकरणात्मक अर्थ में सारा साहित्य किसी न किसी चीज की प्रतिकृति होता है, वास्वत में हम जिसे मौलिकता कहते हैं वह परिचित चीजों का नया मिश्रण होती है।''(चतुर्वेदी, जगदीश्वर, सिंह, सुधा, मीडिया प्राच्यवाद और वर्चुअल यथार्थ, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली,,2008 पृ.76)। उपन्यास में यथार्थ की छाप होती है, लेखक अपने युग की किसी न किसी बड़ी समस्या को उठाता है। औपनिवेशिक युग की सबसे बड़ी समस्या है 'अविवेकवाद'। हमें देखना चाहिए कि क्या हिंदी उपन्यासों ने विवेकवाद को अपने उपन्यासों के जरिए प्रतिष्ठित किया और 'अविवेकवाद' को चुनौती दी या नहीं?

यह विवेकवाद ही है जो कालांतर में आधुनिक अस्मिता के विमर्श का आधार बना। पहचान के सवालों को इसने प्राणवायु दिया। स्त्री के सवालों के केन्द्र में आने का कारण भी यही था लेकिन एक बड़ा संकट था। वह यह कि तत्कालीन समाज में स्त्री की स्थिति पर बहस थी, लेकिन परिवार के ढ़ाचे पर खुलकर आलोचनाओं का अभाव था। हिंदी साहित्य में रचना के स्तर पर परिवार पर विमर्श नहीं था। अकेले प्रेमचंद अपने लगभग प्रत्येक उपन्यास में परिवार की संरचना पर निरंतर चोट करते रहे लेकिन समकालीन कविता और आलोचना में पितृसत्तात्मक ढ़ांचे के अंदर परिवार की संरचना पर बात नहीं हुई।[3]

हिंदी के लेखकों–आलोचकों के निकट परिवार और उसकी संरचनाएँ परम पवित्र हैं। उन्हें नहीं बदलना चाहिए। ये संरचनाए अपनी भीतरी और बाहरी दबाव से बदलती हैं तो कहते हैं कि परिवार टूट रहा है, परिवार का विघटन हो रहा है। बदलाव को नकारात्मक तरीके से देखते हैं। 'टूटना' अपने आप में नकारात्मक शब्द है जबकि संयुक्त परिवार में एकल परिवार तक की यात्रा रूपांतरण है। संयुक्त परिवार के टूटने पर सबसे ज्यादा लेखकों में स्यापा है। संयुक्त परिवार से आधुनिक एकल परिवार में आना और स्त्री के संदर्भ में एकल परिवार की समान उत्पीड़नकारी भूमिका को पहचानकर उनकी घनघोर रचनात्मक आलोचना करना– यह अपने–आप में क्रान्तिकारी दृष्टि है।

आधुनिक समय में परिवार, विवाह पितृसत्ता की जैसी कठोर आलोचना जैनेंद्र के उपन्यासों में मिलती है, वह उनसे पहले लगभग दुर्लभ है। जैनेंद्र के रचनाशिल्प की खूबी है कि जिस विषय को उठातें हैं उसके केन्द्र में स्त्री है। लेकिन वे विषय–विस्तार और शब्दस्फीति में नहीं जाते। यथार्थ के रूपायन के लिए विस्तार के बजाए इशारों से काम लेते हैं। जैनेंद्र कम से कम शब्दों में अपना काम चलाते हैं लेकिन ऐसा करते हुए वे जो कहना चाहते हैं या कहानी को जिस दिशा में ले जाना चाहते हैं, वह कहीं छूटता नहीं। सौ से भी कम पृष्ठों वाले उपन्यास 'त्यागपत्र' (जैनेंद्र, त्यागपत्र, 1937, पूर्वोदय प्रकाशन, 2001, नई दिल्ली) में जिस तरह से एक बड़ी समस्या को उठाया गया है और बिना किसी अतिरिक्त विवरण के कहानी अपनी गति बनाए रखती है वह उपन्यासकार के कौशल को दर्शाता है।

जैनेंद्र ने 'त्यागपत्र' उपन्यास में स्त्री के जीवन से जुड़ी समस्याओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामने रखने का काम किया है। इसके लिए एक औसत नायिका का चयन किया है। एक ऐसी स्त्री जो सामान्य है और औसत है। जिसकी बहुत बड़ी महत्वाकांक्षाए और बड़े–बड़े सपने नहीं है। उसके जीवन में आरंभ में कुछ भी ऐसा नहीं है जो उसे सामान्य से ऊपर रखता है। जैनेंद्र एक औसत सामान्य अभिरूचि, गुण और कार्यक्षमता वाली लड़की को नायिका बनाकर जैसे समस्या की विकरालता की तरफ ध्यान दिलाना चाहते हैं, यह हर भारतीय स्त्री की कहानी और उसके जीवन की घटनाएं हैं। कहानी का आरंभ अत्यंत साधारण और सहज रूप से होता है। कथा औसत से ऊपर तब उठती है जब मृणाल असफल–बेमेल विवाह से ताल–मेल बिठाने के क्रम को तोड़ देती है। छोड़ दिए जाने के बाद जीवन की लालसा बनाए रखती है। इस प्रक्रिया में वह स्वतंत्र निर्णय लेती हे। एक औसत हिंदुस्तानी लड़की की तरह उसका बचपन और किशोरावस्था बीता है। वह देखने में सुंदर

है। पढ़ाई में औसत। वह पढ़ने जाती है, क्योंकि उसे पढ़ने भेजा जा रहा है। एक साधारण–सी घटना पर उसकी पढ़ाई रोक दी जाती है। किशोरवय की एक सामान्य घटना उसके जीवनभर का अभिशाप बना दी जाती है। इस एक घटना की सजा उसे एक बार नहीं दो–दो बार दो संबंधों में भुगतनी पड़ती है। भाई–भाभी के घर में इस घटना के कारण उसकी पढ़ाई छूट जाती है और उससे दोगुने उम्र के व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है।

ध्यान रखना चाहिए कि मृणा के विवाह का आधार उसका रूप–सौंदर्य यानि उसकी देह ही थी। सुंदर और कम उम्र होने के कारण ही उसके विवाह में कोई अड़चन नहीं आई थी अन्यथा तत्कालीन समाज की मानसिकता में कम सुंदर और तथाकथित रूप से चरित्रहीन लड़की की विवाह होना असंभव सी बात थी लेकिन मृणाल के रूप सौंदर्य के कारण उसका विवाह आनन–फानन में करने में परिवारवालों को कोई अड़चन नहीं आई।

जैनेंद्र इस उपन्यास में कभी भी मुखर रूप से पात्रों द्वारा या स्वयं अपनी तरफ से परिवार, पितृसत्ता, स्त्री की स्थिति आदि पर कोई टिप्पणी नहीं करते। स्त्री के साथ किए जा रहे सामाजिक व्यवहार की आलोचना और स्त्री के पक्ष में सहानुभूति, जैनेन्द्र चरित्र के विकास के क्रम में प्रकट करते हैं। चरित्र के परिस्थितियों के बीच रखकर फिर मूल्यांकन का मौका पाठक को देते हैं, लेखक की तरफ से कोई सहानुभूति के शब्द नहीं, कोई पक्ष–विश्लेषण नहीं। चरित्र अपनी गति से विकसित हो रहा है, अपनी बात स्वयं कह रहा है।

चरित्र का विकास करते हुए जैनेंद्र ने कई तरह के प्रयोग किए हैं। आलोच्य उपन्यास 'त्यागपत्र' में ही एक तरह के चरित्र नहीं है, कोई सतही चरित्र है, कोई वृत्ताकार तो कोई अनुपस्थित लेकिन इनमें से किसी को हटाकर कहानी का विकास संभव ही नहीं हो सकता। यह पूरा उपन्यास प्रमोद के नजरिए से लिखा गया है। वह कथा को नैरेट करनेवाला है लेकिन इस चरित्र की खासियत यह है कि इसे मालूम है कि कथा किसकी कहानी है। वह स्वयं को बुआ की कहानी पर हावी नहीं होने देता। प्रमोद का चरित्र कहानी में सपाट चरित्र है, उसमे जो थोड़ा–रेशे हैं, वे उसकी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के अनुरूप ही हैं। प्रमोद के विचार, बुआ के संबंध में उसकी चिंताएँ और व्यवहार– सब कुछ मध्यवर्ग की सामाजिक मान्यताओं और चेतना के अनुकूल है। इसी तरह से प्रमोद के पिता और माँ का चरित्र है।

संदर्भ सूचीः–

1. आजकल, दिसम्बर–1996
2. आजकल, अक्टूबर–2011
3. आजकल, मार्च –2009